

इकाई 15 बिहारी के काव्य का महत्व

इकाई की रूपरेखा

- 15.0 उद्देश्य
- 15.1 प्रस्तावना
- 15.2 समकालीन परिवेश
- 15.3 शृंगार निरूपण
 - 15.3.1 संयोग चित्रण
 - 15.3.2 वियोग चित्रण
- 15.4 प्रकृति चित्रण
- 15.5 भक्ति और नीति
- 15.6 मुक्तक काव्य परंपरा और बिहारी
- 15.7 बिहारी की भाषा
- 15.8 सारांश
- 15.9 प्रश्न/अभ्यास

15.0 उद्देश्य

इस इकाई में हम बिहारी की कविता का अध्ययन करने जा रहे हैं। इसे पढ़कर आप :

- बिहारी के समकालीन परिवेश की जानकारी प्राप्त कर सकेंगे
- शृंगार के कवि के रूप में बिहारी से परिचित हो सकेंगे
- बिहारी की कविताओं में हुए प्रकृति चित्रण के स्वरूप पर विचार कर सकेंगे
- बिहारी के भक्ति और नीति संबंधी दोहों की विशेषताएँ जान सकेंगे
- मुक्तक कवि के रूप में बिहारी की उत्कृष्टता को रेखांकित कर सकेंगे
- बिहारी की भाषा पर प्रकाश डाल सकेंगे; और
- हिंदी साहित्य में बिहारी का स्थान-निर्धारण और मूल्यांकन कर सकेंगे।

15.1 प्रस्तावना

बिहारी रीतिकाल के सर्वाधिक लोकप्रिय कवि हैं। बिहारी की एकमात्र कृति "सतसई" है, और यह इस बात का प्रमाण है कि किसी कवि की श्रेष्ठता की अंतिम कसौटी उसके कृतित्व का परिमाण नहीं, गुण ही है। केवल चौदह सौ से कुछ अधिक पंक्तियाँ लिखकर बिहारी ने जो यश अर्जित किया, वह बहुतेरे चौदह हज़ार पंक्तियों के रचयिता के लिए भी दुर्लभ है। लोकप्रियता की दृष्टि से "बिहारी सतसई" का एकमात्र प्रतिद्वंद्वी "रामचरितमानस" है।

अनुमानतः बिहारी का जन्म 1595 ई. में ग्वालियर में हुआ। बचपन में ही उन्हें अपने पिता के साथ ग्वालियर से ओरछा चला जाना पड़ा, जहाँ उनकी शिक्षा-दीक्षा हुई। बिहारी का विवाह मथुरा के एक ब्राह्मण परिवार में हुआ और विवाहोपरान्त वहाँ बहुत दिनों तक रहे भी।

रीति-कविता राजाओं और रईसों के आश्रय में पली थी। रीति-कवियों के आश्रयदाता तत्कालीन राजा और रईस ही थे। रीति काव्य के सिरमौर बिहारी के आश्रयदाता कई राजा थे। उन्हें कुछ काल तक जहाँगीर के दरबार में रहने का सुअवसर प्राप्त हुआ। वे शाहजहाँ के कृपापात्रों में थे। 1620 ई. में शाहजहाँ के पुत्र-जन्मोत्सव पर सारे देश के अनेक नरेश आमंत्रित हुए थे। बिहारी को उस आयोजन में अपनी काव्य-प्रतिभा का परिचय देने का अवसर मिला, जिससे प्रसन्न होकर अनेक राजाओं ने उनकी थोड़ी-थोड़ी वृत्ति बाँध दी। 1621 ई. में नूरजहाँ की कुटिलता के कारण शाहजहाँ को आगरा छोड़ देना पड़ा और इसके साथ ही बिहारी का भी मुगल दरबार से सम्बन्ध टूट-सा गया। इसके उपरान्त उनका जीवन कुछ काल तक बड़ी अनिश्चित स्थिति में रहा। 1635 ई. के आसपास वे अपनी वृत्ति के लिए जयपुर के राजदरबार में गए, जहाँ महाराजा जय सिंह राज्य की सारी चिंताओं से दूर अपनी नई रानी में डूबे हुए थे। तब उन्होंने महाराज की सेवा में यह दोहा भेजा -

नहिं पराग नहिं मधुर मधु, नहिं विकास इहि काल।
अली कली ही सौं बंध्यौ, आगे कौन हवाल।।

अर्थात् 'न पराग है, न मीठा मकरंद; इस समय तक विकास भी नहीं हुआ है - वह खिली भी नहीं है। अरे भौंरा! कली से ही तो तू इस प्रकार उलझ गया, फिर आगे तेरी क्या दशा होगी।' इस दोहे ने महाराज पर जादू का-सा असर किया और वे अंतःपुर से निकलकर फिर राज-काज देखने लगे। बिहारी पुरस्कृत हुए और भविष्य में इस प्रकार के प्रत्येक दोहे पर एक स्वर्ण मुद्रा पुरस्कार स्वरूप देने का आश्वासन भी मिला। बड़ी रानी श्रीमती अनन्त कुमारी (चौहानी रानी) ने बिहारी का सम्मान करते हुए 'काली पहाड़ी' नामक एक ग्राम दे डाला। साथ ही, उपर्युक्त घटना का स्मारक चित्र भी बनवाया, जो जयपुर के राज प्रासाद में सुरक्षित है। आगे चलकर चौहानी रानी के पुत्र युवराज राम सिंह के लिए बिहारी को शिक्षक भी नियुक्त किया गया। महाराज जयसिंह के दरबार से एक लम्बे समय तक बिहारी का सम्बन्ध रहा और वहाँ रहते हुए 'सतसई' के अधिकतर दोहे लिखे गए। कहा जाता है कि 'सतसई' की रचना बिहारी लाल ने महाराज जय सिंह के लिए की थी। उन्होंने निम्नलिखित दोहे में इसका संकेत किया है -

हुकुम पाय जयसाह को, हरि राधिका प्रसाद।
करी बिहारी सतसई, भरी अनेक सवाद॥

शाहजहाँ के सम्राट बनने के बाद बिहारी का पुनः मुगल दरबार से सम्बन्ध जुड़ गया और उनका शेष जीवन बड़े गौरव और सम्मान के साथ व्यतीत हुआ। उनका देहावसान 1663 ई. के आसपास माना जाता है।

15.2 समकालीन परिवेश

बिहारी के जीवन के इतिवृत्त से स्पष्ट है कि उन्हें विभिन्न राज दरबारों में आश्रय मिला। तब अधिकांश राजाओं का जीवन सामयिक राजनीति से पृथक अवकाश और विलास का जीवन था। दिल्ली का राजवंश ऐश-आराम में मस्त था। राजाओं और रईसों के लिए अवकाश और विलास का अवसर कहीं अधिक था। इनमें आत्म-गौरव की चेतना निःशेष हो चुकी थी। जीवन के प्रति इनका दृष्टिकोण सर्वथा ऐहिक और सामंती रह गया था। किंतु ऐहिकता और सामंतवाद की शक्ति भी अब उनमें नहीं थी, केवल भोगवाद ही शेष था। अतएव ये लोग भोग के सभी उपकरणों को एकत्र करने में प्रयत्नशील रहते थे जिनमें सरस काव्य भी सम्मिलित था। वह सरस काव्य केवल विनोद का रसाला ही नहीं था, एक परिष्कृत बौद्धिक आनंद का साधन तथा व्यक्तित्व का शृंगार भी था। राजा और रईस रससिद्ध कवियों का सत्संग और काव्य का आस्वादन अनिवार्य समझते थे। इससे उनका व्यक्तित्व कलात्मक एवं संस्कृत बनता था।

बिहारी इसी परिवेश में सतसई के दोहों की रचना कर रहे थे। उनके सामने जीवन का कोई ऊँचा आदर्श या यथार्थ की खुरदरी ज़मीन नहीं थी, रूप-रस की उपासना ही उनका मुख्य लक्ष्य था। बिहारी इस रूप-रस के बेजोड़ उपासक कवि हैं। रूप-चित्रण में नारी ही उनका आलंबन है। उन्होंने जैसी अमलवर्ण अनिन्द्य सुंदरियों का गतिशील रूप रेखांकित करने का प्रयास किया है, वे किसी भी साहित्य का शृंगार बन सकता है। रूप-वर्णन में विद्यापति भी कम नहीं हैं, पर दोनों में भारी अंतर यह है कि विद्यापति की नायिका 'साँवरि' है जबकि बिहारी लाल ने साँवलियों का मानो तिरस्कार ही किया है। इसके पीछे कहीं-न-कहीं दरबारी संस्कृति का असर है। दरबार में 'साँवरि' की पूछ कहाँ? बिहारी की नायिका की गोराई - दुधिया गोराई - है। उनकी श्वेत-वर्णा नायिका की निष्कलंक प्रभा परमोज्ज्वल है, ऐसी कि प्रेक्षकों की आँखों में भी दूध उड़ेल देती है -

कहा कुसुम, कह कौमदी, कितक आरसी-जोति।
जाकि उजराई लखै, आखि ऊजरी होति॥

रीति-काव्य जिस दरबारी परिवेश में रचा जा रहा था, वहाँ काव्य मात्र क्रीड़ा और मनोविनोद की वस्तु बनकर रह जाता है। उसमें अलंकारों की प्रचुरता, उक्ति की बारीकी और भाषा की सजावट-मँजावट पर अधिक ध्यान दिया जाता है और उद्देश्य की व्यापकता गौण पड़ जाती है। बिहारी के काव्य में भी ये सारी बातें कमोबेश देखी जा सकती हैं। इस अर्थ में बिहारी का काव्य अपने परिवेशगत संस्कारों का वास्तविक प्रतिनिधित्व करता है। तत्कालीन राजाओं, रईसों एवं दरबारी-जनों के लिए सौंदर्य अपने-आप में उतना मनोहारी नहीं समझा जाता था। उसकी मनोहारीता के लिए अलंकरण आवश्यक शर्त थी। बिहारी

ने भी अलंकरण पर बहुत अधिक बल दिया है। यह अलंकरण प्रायः वस्त्रों के चटकीलेपन, अलंकारों के बहुल प्रयोग और प्रसाधनाधिक्य के रूप में देखने को मिलता है। बिहारी की नायिका की ऐसी स्थिति है कि

अंग-अंग नग जगमगत, दीप सिखा-सी देह।
दिया बढ़ाए हू रहे, बढ़ो उजारी गेह॥

अर्थात् "दीपक की लौ के समान नायिका के अंग-प्रत्यंग में नग जगमगा रहे हैं। अतएव दीपक बुझा देने पर भी घर में (ज्योतिपूर्ण शरीर और नगों के प्रकाश से) खूब उजाला रहता है।" इसके विपरीत, लोक जीवन की नैसर्गिक सुषमा की ओर या तो कवि की दृष्टि जाती ही नहीं और जाती भी है तो ग्राम वधू के "ललचौहे नैन" और "उठौहे कुच" से ही टकराकर रह जाती है।

15.3 शृंगार निरूपण

बिहारी शृंगार के बड़े कवि हैं। उनके दोहों में शृंगार के दोनों पक्षों - संयोग और वियोग - का विशद और सूक्ष्म चित्रण हुआ है। बिहारी की कविता में प्रेम के भौतिक पक्ष का वर्चस्व है। इसमें वर्णित प्रेम सामंती है जिसका मूल आधार रूपासक्ति है।

15.3.1 संयोग चित्रण

बिहारी की कविताओं में संयोग शृंगार के प्रति विशेष ललक दिखाई पड़ती है। संयोग शृंगार का मूल आधार रूपासक्ति और शारीरिक आकर्षण है जिसमें नायक-नायिका के रूप, भंगिमा, चेष्टा आदि का बाहुल्य है। देखकर, सुनकर, स्पर्श कर, बातचीत कर संयोग का परिवेश तैयार होता है। बिहारी के शृंगार वर्णन में क्रीड़ा की प्रधानता है। बिहारी प्रेम को चौगान का एक खेल मानते हैं -

सरस सुमिल चित्र तुरंग की, करि-करि अमित उठान।
गोह निबाहें जीतियै, खेलि प्रेम चौगान॥

बिहारी का प्रेम घनानंद के प्रेम के समान उदात्त नहीं है जहाँ प्रेम 'अति सूधो सनेह को मारग है, जहाँ नेकु सयानप बाँकी नहीं।' यहाँ प्रेम में जीवन-मरण का सवाल है। बिहारी के नायक-नायिकाओं के लिए तो प्रेम एक खेल है।

जैसा कि हमने ऊपर उल्लेख किया है, बिहारी का मुख्य वर्ण्य-विषय नायक-नायिका का संयोग-वियोग वर्णन है। इस संयोग-वियोग वर्णन में भी उनकी दरबारी मनोवृत्ति की झलक देखने को मिलती है। उनके संयोग-चित्रों में मानसिक विशदता और उत्फुल्लता उतनी नहीं मिलती जितना नायिका की विभिन्न शारीरिक चेष्टाओं का मनोरम अंकन मिलता है। इसे शास्त्रीय शब्दावली में "अनुभाव योजना" कहते हैं। उदाहरण के लिए आँखों का लाल होना, भौहों का चढ़ना आदि अनुभाव हैं जिनसे क्रोध की व्यंजना होती है। बिहारी एक ही भाव की व्यंजना के लिए एक-साथ अनेक अनुभावों का चित्रण करते हैं। इस संदर्भ में बिहारी अपना सानी नहीं जानते। शीति-युग के वे सबसे बड़े शब्द-चित्रकार हैं। उनकी बनाई तस्वीरें बड़ी साफ हैं, जिनमें नायिका की भिन्न-भिन्न भंगिमाओं, उसके अंगों के बाँकपन और उठान, उसकी एक-एक अदा और खूबी को देखा जा सकता है -

बतरस लालच लाल की मुरली धरी लुकाय।
सौह करै भौहनि हँसै दैन कहै नटि जाय॥

(राधा ने) बातचीत का मजा लेने के लिए लोभ से श्रीकृष्ण की मुरली छिपाकर रख दी। (अब श्रीकृष्ण के माँगने पर) शपथ खाती है, भौहों से हँसती है। (भौहों को नचा-नचाकर प्रसन्नता जताती है) देने को कहती है (देने के लिए तैयार होती है) और पुनः मना कर देती है। वस्तुतः बिहारी का प्रत्येक दोहा अपने-आप में एक पूरी तस्वीर है। उन्होंने दोहे जैसे छोटे छंद का प्रयोग करके भी चित्र में कहीं धूमिलता नहीं रहने दी है। इतनी कम रेखाओं से ऐसी साफ तस्वीर खींच देना किसी कुशल चित्रकार के लिए भी कठिन होता है।

बिहारी नायिका की मुद्राओं का सहज चित्रण करने में माहिर हैं। देखिए एक चित्रण -

कर समेटि कच भुज उलटि खएँ सीसपट डारि।
काको मन बाँधै न यह जूरो बाँध निहारि॥

नायिका अपने हाथों से अपने बालों को झटक कर पीछे ले जाती है और उसका जूड़ा बना रही है। कवि कहता है कि यह दृश्य किसी को भी बाँध सकता है। यहाँ नायिका की चेष्टाओं का वर्णन मात्र कर दिया गया है। इसमें किसी प्रकार के भाव की स्थापना नहीं है। नायिका की मुद्राओं का सहज वर्णन इस दोहे की विशेषता है।

बिहारी-सतसई नायक-नायिका की ऐसी ही चेष्टाओं-क्रियाओं के चित्रण से भरा पड़ा है। गुरुजनों के बीच बैठे नायक-नायिका के बीच आँखों ही आँखों में प्रेम संवाद होता है -

कहत, नटत, रीझत, खिझत, मिलत, खिलत, लजियात।
भरे भौन में करत हैं, नैननु ही सब बात॥

प्रेम में प्रिय की सभी वस्तुएँ प्यारी लगती हैं। एक बानगी देखिए :

उड़ति गुडी लखि लाल की, अंगना अंगना मांहि।
बौरी लौं दौरी फिरति, छुअत छबीली छांहि॥

नायक पतंग उड़ा रहा है, उसकी परछाई नायिका के घर पर पड़ रही है। नायिका उस परछाई के पीछे-पीछे भाग रही है तथा पतंग की छाया को छूकर प्रिय-स्पर्श के सुख का अनुभव कर रही है। बिहारी के अनेक दोहों में इस प्रकार की मनोवैज्ञानिक अवस्था का चित्रण किया गया है।

यह सही है कि बिहारी के संयोग शृंगार में युग का विलासी-वातावरण चित्रित हुआ है जिसमें उन्होंने जीवन के रसीले प्रसंगों का सूक्ष्म निरीक्षण प्रस्तुत किया है। इसीलिए संयोग-शृंगार को उनकी काव्य की आत्मा माना गया है। उनकी कविताओं में नायक-नायिका की मुद्राएँ, हाव-भाव, चेष्टाएँ पाठक को मुग्ध और चमत्कृत करती हैं। बिहारी ने रूप वर्णन के साथ-साथ रूप की सूक्ष्म अनुभूतियों का भी चित्रण किया है। उन्होंने प्रेम और सौंदर्य का सूक्ष्म चित्रण किया है।

15.3.2 वियोग चित्रण

शृंगार-रस में वियोग का विशेष महत्व है क्योंकि इसमें प्रेमानुभूति की गहरी और व्यापक अनुभूति होती है। जब प्रेम विरह की आग में तपता है तब ही उसकी असली परीक्षा होती है। कवि विरह की इस व्यापकता को पहचानता है -

लाल, तुम्हारे विरह की अगनि अनूप, अपार।
सरसै बरसै नीर दूँ, झर हूँ मिटै न झार॥

अर्थात् प्रिय तुम्हारे विरह की अग्नि की तुलना और किसी चीज़ से नहीं की जा सकती, इसकी थाह भी नहीं ली जा सकती। ऊपर से नीचे तक मैं आँसू की धारा बन गई हूँ फिर भी इस प्रचंड ताप की जलन मिट नहीं रही है।

बिहारी ने अपनी कविता में नायक के परदेश जाने के प्रसंग और उससे उत्पन्न विरह वेदना का यथार्थ चित्रण किया है -

अजौ न आए सहज रंग, विरह दूबरे गात।
अब ही कहा चलाइयत ललन चलन की बात॥

नायक 'परदेस' जा रहा है। सखी कहती है कि अभी तो प्रथम वियोग से ही नायिका पूरी तरह उबर नहीं पाई थी कि प्रिय के जाने का समय आ गया। विरह में दुबले हो गए शरीर (विरह दूबरे गात) में वियोग की पीड़ा व्यंजित हुई है। इन पंक्तियों में विरह सीधे-सीधे हमारी संवेदना और सुख-दुःख की अनुभूति से जुड़ गया है।

प्रिय का इंतज़ार कठिन और पीड़ादायी होता है। आसपास की चीज़ों में प्रिय की ही तस्वीर नज़र आती है पर प्रिय नहीं होता। कवि ने प्रेमिका की इसी संवेदना को निम्नलिखित दोहे में व्यक्त किया है -

**श्याम-सुरति करि राधिका, तकति तरनिजा-नीर।
अँसुवनि करति तरौंस को खिनक खरौंहों नीर॥**

राधा श्याम का स्मरण करके बार-बार श्याम-वर्णी यमुना की ओर देख रही है। यमुना में उसे श्याम का प्रतिबिंब दीख रहा है पर श्याम आते नहीं दीखते। यमुना तट को देखकर न जाने कितनी यादें ताज़ा हो जाती हैं। आँसू खारा है और इसके निरंतर प्रवाहित होने से यमुना तट का जल भी खारा हो जाता है।

प्रतीक्षा की एक-एक घड़ी युगों के समान मालूम पड़ती है। नायक की प्रतीक्षा, आतुरता, उत्सुकता और अधीरता का वर्णन निम्नलिखित दोहे में हुआ है -

**जदपि तेज राहौल बल पलकौ लगी न बार।
तौ गँडो घर को भयौ पँडो कोस हजार॥**

नायक तेज़ चलने वाले घोड़े पर सवार होकर पलक झलकते ही घर के बाहर पहुँच जाता है किंतु घर का रास्ता ही उसे हजार कोस लगने लगा। प्रतीक्षा की वेला का बड़ा ही सुंदर चित्रण बिहारी ने किया है।

लेकिन जैसे ही बिहारी की वाणी अतिशयोक्तिपूर्ण एवं ऊहात्मक होती है वहीं विरह की उक्तियाँ खिलवाड़ मात्र बनकर रह जाती हैं। उनकी ये उक्तियाँ विरहिणी के प्रति पाठक की सहानुभूति तो नहीं ही उकसा पाती, उल्टे इस प्रयत्न में विरहिणी हास्यास्पद बन जाती है -

**आड़े दै आले वसन, जाड़े हूँ की राति।
साहस ककै सनेह बस, सखी सबै ढिग जाति॥**

'जाड़े की (ठंडी) रात में भी गीले कपड़े की ओट कर, बड़े साहस से प्रेमवश सभी सखियाँ (उस विरहिणी नायिका के) निकट जाती हैं। (क्योंकि उसके शरीर में ऐसी प्रचंड विरह-ज्वाला है कि आँच सही नहीं जाती!)' इसलिए बिहारी की विरहिणी जाड़े में भी गीले वस्त्र पहनकर उसके पास जाती है। विरह की व्याकुल नायिका की ज्वाला को शांत करने के लिए जब सखियाँ गुलाब जल डालने का प्रयास करती हैं तो वह बीच में ही वाष्प बनकर उड़ जाता है -

**औघाई सीसी, सुलखि विरह - बरनि बिललात।
बिच हीँ सूखि गुलाबु गौ, छोटौ छुई न गात॥**

विरह-संबंधी अत्युक्ति के अखाड़े में तो बिहारी उर्दू-फारसी के कवियों को भी पीछे छोड़ देते हैं। उर्दू कवियों का "आशिक" तो "इत्तहाए लागरी" से मौत को सिर्फ नंगी आँखों से नहीं दीख पड़ा था, मगर बिहारी की नायिका की कृशता इतनी बढ़ी-चढ़ी है कि चश्मा लगाने पर भी वह नहीं देखी जाती-

**करी विरह ऐसी तऊ गैल न छाड़त नीचु।
दीनेहूँ चसमा चखनि चाहे लखै न मीचु॥**

विरह ने नायिका को ऐसी दुबली-पतली बना दिया तो भी नीच मृत्यु उसका पीछा नहीं छोड़ती। आँखों पर चश्मा चढ़ाकर भी उसे ढूँढ़ निकालना चाहती है, पर तो भी नहीं ढूँढ़ पाती। इस संदर्भ में जफर का शेर बरबस याद हो आता है -

**नातवानी ने बचाई जान मेरी हिज़्र में।
कोने-कोने ढूँढ़ती फिर कजा थी मैं न था॥**

वस्तुतः बिहारी का संयोग वर्णन जितना सफल हुआ है उतना वियोग वर्णन नहीं। लगता है बिहारी को जीवन के संयोग पक्ष का जैसा अनुभव था वैसा वियोग पक्ष का नहीं। नायिका की सुकुमारता, विरह ताप, विरह क्षीणता आदि में बिहारी कहीं-कहीं औचित्य की सीमा का अतिक्रमण कर गए हैं और वहाँ

उनकी कविता खिलवाड़ मात्र बन गई है। इनके विरह-वर्णन में न तो सूर की स्वाभाविकता और तीव्रता है और न जायसी की सी गहनता और अशेष सृष्टि के साथ रागात्मकता। वियोगावस्था में पहुँचते ही बिहारी की नायिका कभी चन्द्रमा और समीर के सामने दौड़ती-फिरती है, कभी जुगनुओं को अंगारे समझकर भीतर छिप जाने की सलाह देती है। रोती है तो आँसू छाती पर पड़ते ही भाप बन कर उड़ जाते हैं। गुलाबजल छिड़कने पर वह भीतर ही सूख जाता है। ऐसे स्थलों में बिहारी बुरी तरह असफल रहे हैं।

बिहारी का मन वियोग-वर्णन में रमा नहीं और विरह में प्रेम के जिस उदात्त रूप का रससिद्ध कवि साक्षात्कार करा दिया करते हैं, बिहारी नहीं करा सके। वे प्रेम के सहज रूप को कम और उसके मनोहर रूप को अधिक पसंद करते हैं। वे उसके कल्पना-कोमल रूप को उभारने का अधिक प्रयास करते हैं और उसकी अनायास शोभा को कम। वे चित्र को कलापूर्ण बनाने में अधिक श्रम करते हैं, उसे वैयक्तिक संबंधों की अनुभूतियों से रंग नहीं पाते। इसीलिए न तो उनमें कालिदास और भवभूति का प्रेमादर्श है, न ही सूर की गहनता और व्यापकता और न ही तुलसी की शालीनता। इस संदर्भ में रीति-युग के ही मतिराम, पद्माकर और देव में अधिक गहनता है। वस्तुतः बिहारी का प्रेम चित्रण रसिकता की कोटि तक पहुँच कर रह गया है, उसकी उच्च भावभूमि पर नहीं पहुँच पाया है। इसके बावजूद बिहारी रीति-युग के सर्वाधिक लोकप्रिय कवि हैं। इसका मुख्य कारण रचना की बारीकी या काव्यांगों के सूक्ष्म विन्यास की निपुणता ही है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल की दृष्टि में बिहारी की कृति का जो अधिक मूल्य आँका गया है उसे अधिकतर रचना की बारीकी या काव्यांगों के सूक्ष्म विन्यास की निपुणता की ओर ही मुख्यतः दृष्टि रखने वाले पारखियों के पक्ष से समझना चाहिए - उसके पक्ष से समझना चाहिए जो किसी हाथी दाँत के टुकड़े पर महीन बेलबूटे देखकर घंटों वाह-वाह किया करते हैं पर जो हृदय के अंतस्तल पर मार्मिक प्रभाव चाहते हैं, किसी भाव की स्वच्छ निर्मल धारा में कुछ देर अपना मन मग्न रखना चाहते हैं उनका संतोष बिहारी से नहीं हो सकता। बिहारी का काव्य हृदय में किसी ऐसी लय या संगीत का संचार नहीं करता जिसकी स्वस्थारा कुछ काल तक गूँजती रहे। यदि घुले हुए भावों का आभ्यांतर प्रवाह बिहारी में होता तो वे एक दोहे पर ही संतोष न करते। मार्मिक प्रभाव का विचार करें तो देव और पद्माकर के कवित्त सवैयों का-सा गूँजने वाला प्रभाव बिहारी के दोहों का नहीं पड़ता।

15.4 प्रकृति चित्रण

वहरहाल सम्पूर्ण भक्ति और रीति-काल में प्रकृति उपेक्षित रही है। उसे या तो मानव व्यापारों की पृष्ठभूमि बनना पड़ा है अथवा मानव-सौंदर्य के अंकन-क्रम में अलंकार रूप में उसका उपयोग हुआ है। उसकी स्वतंत्र सत्ता की ओर बहुत कम कवियों ने ध्यान दिया। बिहारी भी इस सामान्य नियम के अपवाद नहीं थे। उनके मन में प्रकृति-सौंदर्य के प्रति कोई ममत्व नहीं, फिर भी दो-चार वसन्त, ग्रीष्म या पावस से सम्बद्ध अच्छे दोहे उनकी लेखनी से फिसल पड़े हैं। वह उनकी प्रतिभा का वैसा ही दिशान्तर-भ्रमण है, जैसे कभी-कभी शहराती बाबू "पिकनिक" के लिए पड़ोस की वनभूमि की ओर निकल जाते हैं। प्राचीन कवियों में से सेनापति को छोड़कर किसी ने भी प्रकृति का आलम्बन रूप में ग्रहण नहीं किया। प्रायः उपदेश, रहस्य, अलंकार-विधान या उद्दीपन रूप में उसका प्रयोग किया गया है। बिहारी ने भी उसका ग्रहण अप्रस्तुत रूप में किया है, पर कहीं-कहीं पर उसको स्वतंत्र इकाई के रूप में भी चित्रित किया है। बिहारी का एकाध प्रकृति-चित्र तो बेजोड़ है -

रनित भृंग घंटावली झरित दान मधु नीरु।
मंद-मंद आवतु चल्याँ कुंजर कुंज समीरु॥

भौर-रूपी घंटे बज रहे हैं और मकरंद-रूपी गज-मद झर रहा है। कुंज-समीर-रूपी हाथी मंद-मंद चला आ रहा है। एक दूसरा प्रकृति-चित्र देखिए -

बैठी रही अति सघन वन पैठि सदन तन मांहा।
देखी दुपहरी जेठ की छाँहीं चाहति छाँहा॥

छाया या तो अत्यंत सघन वन में बैठ रही है या बस्ती के घर या जीवों के शरीर में घुस गई है। मालूम पड़ता है जेठ मास की दुपहरी देखकर छाया भी छाया चाहती है। ध्यातव्य है कि जेठ की दुपहरी में सूर्य ठीक सिर के ऊपर मध्य आकाश में रहता है। अतः सब चीजों की छाया अत्यंत छोटी होती है। पेड़ की

छाया ठीक उसकी डालियों के नीचे रहती है। घर की छाया घर में ही घुसी रहती है - दीवार से नीचे नहीं उतरती। शरीर की छाया भी नहीं दीख पड़ती - परछाई पैरों के नीचे चली जाती है, मानो वह भी शरीर में ही घुस गई हो। इस दोहे से बिहारी के प्रकृति निरीक्षण-नैपुण्य का उत्कृष्ट परिचय मिलता है।

यहाँ पर प्रकृति के चित्रांकन और नाद-सौंदर्य मनोरम बन पड़े हैं। बिहारी ने मनुष्य स्वभाव को प्रकृति से बहुत कुछ प्रभावित माना है। अतः दोनों को आमने-सामने रखकर चित्रित किया है। इसके बावजूद प्रकृति-चित्रण के संदर्भ में कहना ही होगा कि बिहारी 'शहराती बाबू' की तरह पिकनिक के लिए पड़ोस की वनभूमि की ओर निकले हैं। वस्तुतः 'बिहारी सतसई' में प्रकृति के प्रति यह दुराव या अनभिज्ञता दरबारी संस्कृति में आपाद-मस्तक डूबे रहने के कारण है। राज दरबारों में तो प्रकृति के औदार्य एवं विस्तार का दर्शन दुर्लभ ही रहता है। किंतु जहाँ वे प्रकृति का मनोरम दृश्य चित्रित करते हैं, वहाँ दरबारी संस्कृति से मुक्ति भी दिखाई पड़ती है।

15.5 भक्ति और नीति

भक्ति

बिहारी ने भक्ति और नीति के दोहे भी लिखे हैं। और यहाँ वे दरबारी संस्कृति से मुक्त होते प्रतीत होते हैं। यह सही है कि रीति-काल के अधिकांश कवियों की भाँति बिहारी की भक्ति भी औपचारिक है और शायद कवि के आत्म-प्रबोध का एक बहाना भी! बिहारी ने जहाँ अपने आराध्य का स्मरण किया है, वहाँ भी उनकी रसिकता, चमत्कारप्रियता और अलंकरण-वृत्ति साथ लगी हुई है। "सतसई" के मंगलाचरण वाले इस दोहे को देखें -

मेरी भवबाधा हरौ राधा नागरि सोइ।
जा तन की झाँई परै स्याम हरित-दुति होइ॥

ध्यातव्य है कि कवि का सांसारिक कष्टों के शमन के लिए निवेदन "नागरी राधा" से है। दोहे के चौथे चरण के चमत्कार के संबंध में तो कुछ कहना ही व्यर्थ है, जिसके दर्जनों अर्थ किए जा चुके हैं। तब इतना अवश्य है कि बिहारी मुक्ति हेतु तीर्थ-व्रत और कर्मकांड को व्यर्थ घोषित कर अनन्य भगवत्प्रेम और सत्संग पर बल देते हैं -

जपमाला छापा तिलक सरै न एको काम।
मन काँचै नाँचै वृथा साँचै राँचै राम॥

जप (मंत्र-पाठ), माला (सुमिरन), छापा या तिलक से एक भी काम नहीं सघ सकता - कोई भी मनोस्थिति सिद्ध नहीं हो सकता। जब मन कच्चा है - मन वश में नहीं है तो यह सारा नाच (आडम्बर) वृथा है, (क्योंकि) राम तो सत्य से ही प्रसन्न होते हैं (आडम्बरों से नहीं)। कबीरदास ने भी इन्हीं भावों से मिलते-जुलते लिखा है -

माला तो कर में फिरै, जीभ फिरै मुख मॉहि।
मनुओं तो दस दिसि फिरै, यह तो सुमिरन नॉहि॥

बिहारी और कबीर दो विपरीत ध्रुवों पर स्थित हैं, किंतु यह भाव-साम्य रेखांकित करने योग्य अवश्य है।

"बिहारी सतसई" में भक्ति की चर्चा है, किंतु इससे बिहारी को भक्त नहीं कहा जा सकता। यद्यपि इस बात के प्रमाण हैं कि बिहारी की शिक्षा-दीक्षा औरछा में ही हुई और वे वहाँ हरिदास सम्प्रदाय के महात्मा नरहरि दास के शिष्य हो गए। किंतु इनकी आस्था किसी वाद विशेष पर नहीं थी। उन्होंने समान भाव से राम, कृष्ण और नृसिंह का स्मरण किया है। कहीं निर्गुण की महिमा मुक्त कंठ से गाई है। प्रतिबिम्बवाद और अद्वैतवाद के संबंध में भी कुछ न कुछ कहा है। नाम-स्मरण पर भी अत्यंत बल दिया है। कहीं-कहीं पर अपने आराध्य देव के प्रति अति श्रद्धामयी वचनवक्रता से भी काम लिया है। यह सब कुछ होते हुए भी उन्हें भक्त नहीं कहा जा सकता है। वे पहले कवि हैं और वह भी अनुराग के, विराग के नहीं। भक्त का हृदय उन्हें प्राप्त नहीं था। तभी तो उनकी दृष्टि राधा की तनद्युति पर टिकी रही है, मन तक नहीं जा सकी। भक्तों के हृदय की-सी पवित्रता, आर्द्रता, कोमलता, कातरता, दीनता

और भावमग्नता उनमें नहीं है। फिर भी इतना तय है कि बिहारी के भक्ति संबंधी दोहे उनकी दरबारी संस्कृति से एक सीमित अर्थ में मुक्ति के प्रमाण हैं।

नीति

बिहारी के नीति के दोहे भले ही भक्ति के दोहों की तरह हाशिये पर हों, पर वे बिहारी के विशद जीवनानुभव और बहुज्ञता के प्रमाण हैं। उन्होंने न केवल सामान्य रीति-नीति और दरबारी अदब-कायदों से अपने पाठकों को अवगत कराने की आवश्यकता समझी है बल्कि जीवन के विभिन्न पक्षों, उतास-चढ़ाव के संबंध में भी मार्मिक सूक्तियाँ कही हैं। इसी क्रम में वे हँसते-हँसते अपने समाज की असंगतियों पर भी उंगली रख देते हैं। देखिए, पुंसात्व की दवा देने वाले एक वैद्य जी के प्रति कितना गहरा व्यंग्य है -

बहुधन लै अहसान कै, पारौ देत सराहि।
बेदवधु हँसि भेद सौं रही नाह-मुँह चाहि॥

बेचारा रोगी तो विश्वासपूर्वक पौष्टिक भस्म ले लेता है, लेकिन वैद्य की पत्नी, जो स्वयं पति की नपुंसकता को जानती है, इस ढकोसले को देखकर अपनी मुस्कुराहट नहीं छिपा पाती। ऐसे प्रसंगों में बिहारी की कविता दरबारी संस्कृति से मुक्त दृष्टिगत होती है।

बिहारी के नीति के दोहे कम महत्वपूर्ण नहीं हैं। इन दोहों में जीवन की कठोर वास्तविकता पर बड़ी मार्मिक उक्तियाँ कही गई हैं। ऐसा लगता है शृंगार के दोहे जहाँ राजाओं और आश्रयदाताओं के मनोविनोद के लिए लिखे गए हैं, वहाँ नीति के दोहे वास्तविक जीवन में पैठकर रचे गए हैं। इन दोहों में जिदगी के वे आनंद और विषादपूर्ण अनुभव व्यक्त हुए हैं, जो कवि ने घूम-घूम कर पाये थे। एक ओर उन्होंने सज्जनों की वह मित्रता पाई थी, जो कभी नहीं घटती -

चटक न छाँड़त घटतहँ सज्जन नेह गँभीर।
फीको परै न बरू फटै रंग्यो चोल रंग चीर॥

ऐसे सज्जन ज्यों-ज्यों उन्नति करते जाते हैं, त्यों-त्यों विनम्र होते जाते हैं -

नर की अरु नीलनीर की गति एकै करि जोय।
जेतो नीचौ ह्यै चलै तेतो ऊँचौ होय॥

यह भी देखा था कि अधिक दिनों तक पहुनाई करने से मान घट जाता है -

आवत जात न जानियत, तेजहि तजि सियरान।
घरहिं जँवाई लौ घट्यो, खरो पूस-दिनमान॥

महाराज जयसिंह की मृत्यु के पश्चात राज्य के लिए उनके उत्तराधिकारियों में होने वाले झगड़े और इस कारण उपेक्षित-पीड़ित प्रजा को देखकर बिहारी ने अनुभव किया था कि अधिक मालिकों के हो जाने से प्रजा को दुख भोगना पड़ता है -

दुसरु दुराज-प्रजान को, क्यों न बढै दुख द्वंद।
अधिक अंधेरो जग करै मिति पावस रविबंद॥

कवि ने धन के नशे में चूर उन व्यक्तियों को देखा था और पाया था कि धन का नशा धतूरे के नशे से भी बढ़कर होता है -

कनक कनक ते सौंगुनी मादकता अधिकाय।
वहि खायै बीरात नर यहि पाये बीराय॥

वस्तुतः नीति के दोहे अनुभव की खमीर से तने हैं। कवि ने अपने काव्य-कौशल से इन्हें परम विश्वसनीय और काव्योपयोगी बना दिया है। जल से सज्जन की तुलना करके कवि ने सज्जन के स्वभाव को बड़ी खूबी से उदाहृत कर दिया है। इसी प्रकार, दो राजाओं से उत्पन्न स्थिति को अमावस्या

15.6 मुक्तक काव्य परंपरा और बिहारी

बहुत बड़ी बात को थोड़े शब्दों में चमत्कारपूर्ण ढंग से कह देना, एक बड़े प्रसंग को दोहे की सीमित काया में अंटाकर अलंकारों की लड़ी पिरो देना बिहारी का प्रमुख कौशल है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल की दृष्टि में मुक्तक कविता में जो गुण होना चाहिए वह बिहारी के दोहों में अपने चरम उत्कर्ष को पहुँचा है, इसमें कोई संदेह नहीं। मुक्तक में प्रबंध के समान रस की धारा नहीं बहती, जिसमें कथा-प्रसंग की परिस्थिति में अपने को भूला हुआ पाठक मग्न हो जाता है और हृदय में एक स्थायी प्रभाव ग्रहण करता है। इसमें तो रस के ऐसे छींटे पड़ते हैं, जिनसे हृदय कलिका थोड़ी देर के लिए खिल उठती है। यदि प्रबंध काव्य एक विस्तृत वनस्थली है तो मुक्तक एक चुना हुआ गुलदस्ता है।

भारत में ईसा के आसपास से ही ऐसे शृंगारिक मुक्तकों का प्रचलन था, जिसमें धर्म और नैतिकता के अनुशासन से दूर लोक जीवन के रसमय पक्षों की झाँकी उपस्थित की जाती थी। इस संदर्भ में सातवाहन नरेश हाल की प्राकृत रचना "गाथा सप्तशती" उल्लेखनीय है। इसमें आभीर जाति के जीवन के उन्मुक्त हास-विलास, मनोरम प्रेम-क्रीड़ाओं और उन्मादक काम-वेष्टाओं का मार्मिक अंकन हुआ है। यह कृति इतनी लोकप्रिय हुई कि इसके अनुकरण पर संस्कृत में भी रचनाएँ होने लगीं। गोवर्द्धन की "आर्या सप्तशती", अमरुक के "अमरुक शतक", उत्प्रेक्षावल्लभ के "सुन्दरी तिलक" आदि में इसी परम्परा का विकास है। बिहारी जहाँ एक ओर रीतिशास्त्र के जानकार थे, वहीं दूसरी ओर उनका शृंगारिक मुक्तकों की इस सरस परम्परा से भी निकट का परिचय था और उन्होंने अपनी "सतसई" में दोनों का मुँह मिला दिया है। उन्होंने अपने संस्कार, परिवेश और फारसी शायरी से कलम की सफाई और महीनकारी लेकर पुरानी उक्तियों को और भी बेधक बना दिया है एवं उसमें एक विशेष प्रकार की चमक भर दी है। "गाथा सप्तशती" का एक पद है -

अब्बो दुक्कर आरक पुणो वितन्ति करेसि गमणास।
अज्ज विण होन्ति सरला वेणीय तरंगिणे चितुरा॥

अर्थात् "हे दुष्कर व्यवहार करने वाले! अब तक तो तुम्हारे प्रवास के दिनों के गुलझट पड़े केश भी नहीं सुलझ पाए हैं और तुम फिर बाहर जाने की चिन्ता में लगे।" बिहारी ने इस भाव को किंचित बदलकर अपनी "सतसई" में यह रूप दे दिया है -

अजौ न आए सहज रंग बिरह दूबरे गात।
अब ही कहा चलाइयतु, ललन चलन की बात॥

"विरह में दुबली हुई (नायिका की) देह में अब तक स्वाभाविक कांति भी नहीं आई है (फिर) हे ललन, (परदेस) चलने की बात अभी क्यों चला रहे हैं?"

बिहारी का यह दोहा गाथाकार की उक्ति से कहीं ज्यादा मार्मिक और मनोज्ञ बन गया है क्योंकि वहाँ उलझे हुए केशों के ही न सुलझ पाने की चर्चा थी, यहाँ प्रिय के प्रवास का प्रभाव सम्पूर्ण शरीर की विवर्णता के रूप में प्रकट हुआ है। इससे विरह की तीव्रता की व्यंजना तो होती ही है, पाठकों के अंतःकरण पर भी इसका प्रभाव अधिक सीधा और गहरा पड़ता है। यह दोहा एक बाह्य व्यापास-मात्र से सम्बद्ध नहीं और अपेक्षाकृत विशद जीवन-दृष्टि तथा व्यापक मानसिक संघटन का परिचायक है।

बिहारी एक सजग कलाकार हैं। उन्होंने जीवन में 713 दोहों का ही एक ग्रंथ लिखा और वह है "बिहारी सतसई"। बिहारी मुक्तक कवि हैं। मुक्तकार के पास जीवन का आधार फलक अत्यंत सीमित होता है और उसमें ही उसे सजीव रूप रेखाएँ और रंग भरने पड़ते हैं। जिस मुक्तक काव्य में यह रूप रंग जितना उज्वल होगा वह उतना ही सफल होगा। संस्कृत के अमरुक और बिहारी के दोहों में मुक्तक काव्य की यह विशिष्टता अपनी चरम सीमा पर पहुँची हुई है। मुक्तक काव्य में कल्पना की समाहार शक्ति और भाषा की समास शक्ति का होना अनिवार्य होता है, उसे अपने खंड दृश्यों में रस की एक ऐसी वेगवती अजस्र धारा प्रवाहित करनी होती है जो हृदय कलिका को विकसित कर दे, उसके प्रत्येक पद्य का पूर्वापर सम्बन्ध से रहित अपना एक अलग अस्तित्व हो, उसके पद्य-स्तवकों में

प्रभावजन्य एक अपूर्व निविडता और तरलता हो, जो स्थायी प्रभाव उत्पन्न करने में सक्षम हो और पाठक को चमत्कृत कर दे। मुक्तक के ये सभी गुण अपने भव्य रूप में बिहारी के दोहों में विद्यमान हैं। उनका प्रत्येक दोहा एक-एक उज्ज्वल रत्न है। उन्होंने गागर में सागर भर दिया है। किसी ने ठीक ही कहा है -

सतसैया के दोहरे, ज्यों नावक के तीर।
देखन में छोटे लर्गे, बेधैं सकल सरीर॥

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने मुक्तक की सफलता के लिए दो शर्तें रखी हैं - "कल्पना की समाहार शक्ति" और "भाषा की समास शक्ति"। बिहारी रमणीय प्रसंगों की उद्भावना और संयोजन में जितने पटु हैं, भाषा के चुस्त प्रयोग में भी उतने ही सुदृढ़। इसीलिए वे दोहे की छोटी-सी ज़मीन पर इतने करिश्मे दिखा सके हैं, जैसे नट कूदकर छोटी-सी कुंडली से शीघ्रता से निकल जाता है। ध्यातव्य है कि एक से एक बारीक सूझ बिहारी की कविता में मिलेगी। फिर, खूबी यह कि ये कल्पनाएँ एक-दूसरे से जुड़ी प्रतीत रहती हैं। कल्पना की इसी समाहार शक्ति के कारण बिहारी ने एक-एक दोहे में अपार अर्थ-गाम्भीर्य भर दिया है - "अर्थ अमित अरू आखर थोरे" - तुलसीदास की इस उक्ति को बिहारी ने ही चरितार्थ किया।

बिहारी की काव्य-भाषा में समास शक्ति पूर्ण रूप में विद्यमान है। इसके कारण काव्य-भाषा में अद्भुत कसावट आ गई है। थोड़े में बहुत अधिक कह देना बिहारी का बहुत बड़ा कौशल है और यही उनकी सफलता का रहस्य भी है। लेकिन इसके लिए उन्हें शब्दों की ज्यादा तोड़-मरोड़ नहीं करनी पड़ी है।

संक्षिप्तता और सांकेतिकता के अतिरिक्त, बिहारी की काव्य-कला की दूसरी विशेषता है वाग्वैदग्ध या कथन-चातुरी। बिहारी एक साधारण-सी लगने वाली बात को भी इस खूबी से, इस शब्दावली में कहते हैं कि वह साधारण बात भी अपूर्व-असाधारण हो जाती है। अच्छे गहने और अच्छे वस्त्र के अभाव में भी वस्तुतः सुंदर स्त्री सुंदर लगती है। यह एक साधारण बात है। मगर इसी को बिहारी इस खूबी से कहते हैं कि एक अपूर्व चमत्कार आ जाता है -

भूषण भार सँभारिहैं, क्यों यह तन सुकुमार।
सूघो पायें न परत महि, सोभा ही के भार॥

बिहारी ने शब्दों का निपुण और बेजोड़ प्रयोग किया है। यदि किसी शब्द विशेष को बदलकर पर्यायवाची अन्य शब्द रख दिए जाएँ तो सारा चमत्कार तो चौपट हो ही जाएगा "लीक नहीं यह पीक की, श्रुति-मन-मूल कपाल।" यहाँ "श्रुति" आदि शब्द बदले नहीं जा सकते। बिहारी के दोहे में प्रत्येक शब्द एक विशिष्ट चित्र, ध्वनि और अर्थ रखता है। निम्नलिखित दोहे में प्रत्येक शब्द एक शब्द-चित्र दे रहा है और लगता है कि आँखों के सामने तस्वीरों की रील चल रही है -

भरत, ढरत, बूड़त, तिरत, रहत, घरी लौं नैन।
ज्यों-ज्यों पट झटकति, हैंसति, हठति, नचावति नैन ॥

इसी प्रकार, निम्नलिखित दोहे में प्रत्येक शब्द ऐसी ध्वनि लिए हुए है कि उच्चारण से वस्तु का बोध हो जाता है -

रनित भृंग घंटावली झरित दान मधु-नीरू।
मंद मंद आवतु चल्थौ कुंजर कुंज समीरू॥

15.7 बिहारी की भाषा

बिहारी की भाषा ब्रजभाषा है। उनके समय तक ब्रजभाषा साहित्य की भाषा के रूप में स्वीकृत हो चुकी थी और सूर, तुलसी, नंददास, रसखान जैसे कवियों द्वारा उसका पर्याप्त परिमार्जन भी किया जा चुका था। बिहारी ने इस परिमार्जन का लाभ उठाया और उसके माधुर्य, ध्वन्यात्मकता आदि के विकास की साधना की। बिहारी की भाषा को हम अपेक्षाकृत शुद्ध ब्रजभाषा कह सकते हैं। उनके समय में ब्रजभाषा का क्षेत्र अत्यंत विस्तृत हो चुका था। इनकी भाषा चलती हुई ब्रजभाषा का साहित्यिक रूप है। उनका

शब्द-गठन और वाक्य-विन्यास पर्याप्त सुव्यवस्थित है। बिहारी ने सबसे पहले शब्दों की एकरूपता और प्रांजलता पर ध्यान दिया और भाषा में परिष्कार का मार्ग प्रशस्त किया। साहित्यिक ब्रजभाषा का रूप इनकी ही कविता में सर्वप्रथम निखार को प्राप्त हुआ। बाद में घनानंद और पद्माकर ने उसे और अधिक परिष्कृत किया। बिहारी की भाषा में बुंदेलखंडी और पूर्वी का प्रभाव है। तुक के आग्रह और प्रयोग बाहुल्य के कारण पूर्वी के प्रयोग हुए हैं। बुंदेलखंडी के प्रयोग शैशव के अभ्यास के कारण सहज रूप में आए हैं। कहीं-कहीं अरबी-फारसी के शब्दों का प्रयोग भी मिलता है। लोकोक्तियों और मुहावरों का प्रयोग भाषा को प्रेषणीय बना देता है। बिहारी की काव्य-भाषा में नाद-सौंदर्य है और वह माधुर्य गुण सम्पन्न है। माधुर्य गुण के अनुकूल शब्द चयन किया है। भाषा के अलंकरण के लिए इन्होंने यमक, अनुप्रास, वीप्सा आदि शब्दालंकारों का प्रयोग किया है। आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र की दृष्टि में बिहारी का भाषा पर वास्तविक अधिकार था। उनके बाद भाषा पर अच्छा अधिकार दिखाने वाले मतिराम, पद्माकर आदि कुछ ही प्रवीण कवि हुए हैं। आधुनिक समय में रत्नाकर ने वैसा ही अधिकार दिखाया है। इसलिए बिहारी को भाषा का पंडित कहना चाहिए। भाषा की दृष्टि से बिहारी की समता करने वाला, भाषा पर वैसा अधिकार रखने वाला कोई मुक्तककार नहीं दिखाई पड़ता है।

बिहारी ने केवल दो छंदों का प्रयोग किया है - दोहा और सोरठा। ये दोनों 48 मात्रा के छंद हैं और परस्पर सम्बद्ध हैं। संस्कृत के मुक्तक कवि अमरुक ने शार्दूलविक्रीडित छंद को, प्राकृत एवं संस्कृत के अन्य मुक्तककारों ने गाथा और आर्या छंद को, बिहारी के बाद के मुक्तककारों ने सवैया एवं कुंडलिया छंद को अपनाया है। किंतु बिहारी दोहे में ही अपनी भाव-सुषमा को चित्रित करते रहे।

बिहारी के काव्य की एक बड़ी उपलब्धि है अलंकारों का निपुण प्रयोग। यद्यपि बिहारी ने किसी शीत-ग्रंथ का निर्माण नहीं किया, किंतु अलंकारों का जैसा सटीक और चुस्त प्रयोग उनके दोहों में दीख पड़ता है, वैसा बहुतेरे उन कवियों की कविताओं में भी नहीं दीखता जिनका प्रमुख लक्ष्य अलंकार-निरूपण ही रहा है। "असंगति" अलंकार का यह बेजोड़ उदाहरण चिरकाल से सहृदयों का कंठहार रहा है -

**दृग उरझत दूटत कुटुम, जुरत चतुर चित प्रीति।
परत गाँठ दुरजन हिए, दई नई यह शीति॥**

"उलझते हैं नेत्र, दूटता है कुटुम! प्रीति जुड़ती है चतुरों के चित्त में, और गाँठ पड़ती है दुर्जन के हृदय में! प्रेम की यह अनोखी शीति है।"

बिहारी का शायद ही कोई ऐसा दोहा हो, जिसमें किसी न किसी अलंकार का प्रयोग न मिले। कहीं-कहीं तो एक साथ पाँच-छह अलंकार लिपटे हुए दीख पड़ेंगे, जैसे निम्नलिखित दोहे में हमें एक ही जगह वृत्त्यनुप्रास, छेकानुप्रास, उपमा, तद्गुण, परिकर, देहली-दीपक आदि अनेक अलंकार संश्लिष्ट दीख पड़ते हैं -

**हों रीझी लखि रीझिहौ, छबिहि छबीले लाल।
सोनजूही सी होत दुति, मिलत मालती माल॥**

बिहारी अलंकारवादी नहीं थे। उन्होंने स्वच्छंद रूप से अलंकारों का प्रयोग किया है। प्रायः प्रत्येक दोहे में उक्ति वैचित्र्य के साथ अलंकारों की सुंदर योजना हुई है। सादृश्यमूलक अलंकारों में उपमा, उत्प्रेक्षा, रूपकादि का प्रयोग अधिक हुआ है। रूपक तो बिहारी का प्रिय अलंकार है। जैसे यमक, समासोक्ति, अपह्नुति अलंकारों का भी सुंदर प्रयोग हुआ है। यमक का उदाहरण देखिए -

**तो पर वारी उरबसी सुधि राधिके सुजान।
तु मोहन के उरबसी ह्वै उरबसी समान॥**

शीतिकाल में मुख्यतः तीन सम्प्रदाय प्रचलित थे - अलंकार, रस और ध्वनि। बिहारी आलंकारिक चमत्कार के अनावश्यक मोह से कहीं भी ग्रस्त नहीं हुए। उन्होंने अलंकारों का प्रयोग साधन के रूप में किया है, साध्य रूप में नहीं। रस भी बिहारी का साध्य लक्षित नहीं होता। वे वस्तुतः ध्वनिवादी हैं। रस-ध्वनि, अलंकार-ध्वनि और वस्तु-ध्वनि को प्रहण करके बिहारी ने सांकेतिक अर्थ को द्योतित किया है। अतः उनकी रुचि ध्वनि-सम्प्रदाय की ओर अधिक है।

बिहारी शृंगार रस के बड़े कवि हैं। उन्होंने अपनी कविता में शृंगार और वियोग का विशद चित्रण किया है। उनकी कविता में रूपासक्ति, चेष्टाओं और प्रेम क्रीड़ा पर ही ज्यादा बल दिया गया है। वे प्रेम को चौगान का खेल समझते थे जिसमें दौंव-पेंच, लुका-छिपी का महत्व होता है। उनकी कविता में स्थापत्य और शिल्प और पांडित्य का ज़ोर ज्यादा है अनुभूति का कम। इनकी कविताओं को पढ़कर पाठक चमत्कृत तो होता है परंतु इससे उसके हृदय पर मार्मिक प्रभाव नहीं पड़ता। बिहारी के बारे में आचार्य शुक्ल ने लिखा है :

बिहारी की कृति का मूल्य जो अधिक आंका गया है उसे अधिकतर रचना की बारीकी या काव्यांगों के सूक्ष्म विन्यास की निपुणता की ओर ही मुख्यतः दृष्टि रखने वाले पारखियों के पक्ष से समझना चाहिए - उनके पक्षों को समझना चाहिए जो किसी हाथी-दौंत के टुकड़े पर महीन बेलबूटे देख घंटों वाह वाह किया करते हैं। पर जो हृदय के अंतस्तल पर मार्मिक प्रभाव चाहते हैं, किसी भाव की स्वच्छ निर्मल धारा में कुछ देर अपना मन मग्न रखना चाहते हैं, उनका संतोष बिहारी से नहीं हो सकता।

बिहारी की कविता के सीमित फलक से हम निराश हो सकते हैं, उनकी जीवन-दृष्टि से असहमत हो सकते हैं। किंतु उन्होंने रूप, चित्रों के कनक-कटोरों में इतना लावण्य उडेल दिया है कि काव्य-रसिक कभी उनकी उपेक्षा नहीं कर पाएंगे।

15.9 प्रश्न/अभ्यास

1. बिहारी की कविता में चित्रित संयोग और वियोग शृंगार की खूबियों और खामियों का आलोचनात्मक मूल्यांकन कीजिए।
2. 'मुक्तक कविता में जो गुण होना चाहिए वह बिहारी के दोहों में अपने चरम उत्कर्ष को पहुँचा है।' इस कथन के आलोक में बिहारी की कविता का विश्लेषण कीजिए।